बिहार की बौद्धिक विरासत नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालय

अर्यमा

विश्वविद्यालय इतिहास विभाग
बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत–842001

बौद्ध शिक्षण–पद्धति का आरंभ महात्मा बुद्ध ने किया था, जिसमें सरल और सुबोध जनभाषा में जीवन के तत्वों की चर्चा थी। व्याख्यान और प्रश्नोत्तर के आधार पर विचारों का आख्यान किया गया था। उन्होंने धर्म के प्रचार में प्रासंगिक उपमा, दृष्टान्त, उदाहरण, कथा आदि का समावेश किया था जिससे उसके तत्व श्रोताओं को सरलतपूर्वक बोधगम्य होता था। विचार–विनिमय, तर्क और पर्यलोचन को बौद्धधर्म में प्रतिष्ठित किया गया। बौद्ध शिक्षा–पद्धति में सत्य दार्शनिक तथ्य, तर्क, पर्यवेक्षण, मनन आदि पर अधिक बल दिया गया। बुद्ध के पश्चात् समाज में बौद्ध शिक्षा का क्रमशः प्रसार होने लगा। बौद्ध मठों और बिहारों के माध्यम से बौद्ध शिक्षा का प्रचार भारत के विभिन्न भागों में हुआ था। प्रारम्भ में हिन्दू और बौद्ध शिक्षाओं के मूल में कोई विशेष अन्तर नहीं था, किन्तु बाद में आकर दोनों शिक्षा–प्रणालियों के आदर्श और पद्धति में बहुत कम साम्य रह गया।[1]विनय और धर्म की शिक्षा उपासक को दी जाती थी, जिसमें महात्मा बुद्ध के धर्म सिद्धान्तों का नियोजन होता था। सुत्त, विनय और धम्म के शिक्षार्थी एक साथ रहते थे अथवा भिक्षु सुत्त का पाठ करते थे, विनय का विमर्श करते थे तथा धम्म का पर्यालोचन करते थे, जिससे उनके ज्ञान की वृद्धि होती थी। यही नहीं बौद्ध बिहारों के माध्यम से बुद्ध के वचन और शिक्षाएँ प्रचारित होती थी।[2] बुद्ध के बाद से बौद्ध बिहार और मठ बौद्ध शिक्षा के केन्द्रों के रूप में विकसित होने लगे। नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों तथा श्रावस्ती और बलभी बिहारों का उत्कर्ष इसी प्रकार हुआ था। बौद्ध शिक्षण संस्था की सम्पूर्ण व्यवस्था बौद्ध भिक्षुओं के हाथ में रहती थी, चाहे वह छोटा बौद्ध संघ हो अथवा बड़े विश्वविद्यालयों का प्रबन्ध किसी विशिष्ट विद्वान के निर्देशन में होता था, जो संघ के सदस्यों के मतों से भिक्षुओं में से चुना जाता था। ऐसा प्रबन्धक अपने ज्ञान और विद्वता में अग्रणी होता था।[3] नालन्दा विश्वविद्यालय, जो पहले बौद्ध संघ था, कालान्तर में विश्व विख्यात शिक्षा संस्था के रूप में विख्यात हुआ था। ऐसे प्रधान आचार्य के प्रबन्ध में सहायता प्रदान करने के लिए कई समितियाँ होती थी, जिनमें दो समितियाँ प्रधान थी– एक शिक्षा–समिति और दूसरी प्रबंध–समिति।

नालन्दा विश्वविद्यालय

प्राचीन काल के उत्तरार्द्ध में नालन्दा विश्वविद्यालय अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त कर चुका था जहाँ बौद्ध धर्म और दर्शन की शिक्षा के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। इस विश्वविद्यालय के विषय में चीनी यात्रियों नें विशेषरूप से विस्तारपूर्वक लिखा है। वैसे, नालन्दा की ख्याति महात्मा बुद्ध के समय से थी। 500 श्रेष्ठियों ने मिलकर 10 करोड़ मुद्राओं से नालन्दा क्षेत्र को क्रय करके महात्मा बुद्ध को अर्पित किया था। बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र की यह जन्मभूमि थी। तथागत ने यहाँ के आम्रवन में कई दिन व्यतीत करके अपने शिष्यों को अपने धर्म की शिक्षा दी थी। कालान्तर में अशोक महान् ने वहाँ एक विशाल बिहार का निर्माण कराया था। ऐसा लगता है कि यह स्थान अपने प्रारम्भिक काल में ब्राह्मण शिक्षा का केन्द्र होते हुए भी बौद्ध धर्म और शिक्षा का भी प्रचार–स्थान था। इसकी प्रमुखता पाँचवीं सदी के मध्य में अधिक बढ़ी जब बौद्ध विद्वान् दिङनाग ने नालन्दा में जाकर वहाँ के विख्यात ब्राह्मण पंडित सुदुर्गम को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। समय–समय पर गुप्त राजाओं ने नालन्दा के विकास में सराहनीय योग प्रदान किया था, जो उनकी धार्मिक सहिष्णुता और विचारों की व्यापकता का उज्ज्वल पक्ष है। सर्वप्रथम कुमारगुप्त (414–455 ई0) ने इस बौद्ध संघ को दान दिया था।

उसके बाद बुद्धगुप्त, तथागतगुप्त, नरीसिंहगुप्त बालादित्य आदि अनेक गुप्त राजाओं ने इसे अपना संरक्षण प्रदान कर इसके विकास में योग दिया था।[4]

श्वानच्वांग के विवरण से विदित है कि अनेकानेक बौद्ध बिहारों का निर्माण यहाँ किया गया था। बिहारों में कुछ तो काफी बड़े और भव्य थे जिनके गगनचुम्बी शिखर अत्यन्त आकर्षक थे। यहाँ का सबसे बड़ा बिहार 203 फीट लम्बा और 164 फीट चौड़ा था। इसके कक्ष 9 फीट से 12 फीट तक लम्बे थे। यशोवर्मन के एक अभिलेख से विदित होता है कि नालन्दा के बिहारों की शिखर–श्रेणियाँ गगनस्थ मेघों का चुम्बन करती थी। इनमें अनेक जलाशय थे, जिनमें कमल तैरते रहते थे। यहाँ कई विशालकाय भवन थे, जिनमें छोटे–बड़े अनेक कक्ष थे। उत्खनन से मिले अवशेष वहाँ की भव्यता प्रमाणित करते हैं। विश्वविद्यालय भवन में व्याख्यान के निमित्त 7 विशालकाय कक्ष और 300 छोटे–बड़े कक्ष थे। विद्यार्थी छात्रावासों में रहते थे तथा प्रत्येक कोने पर कूपों का निर्माण किया गया था, जिसका पुष्टि उत्खनन में मिले साक्ष्य से होती है। नालन्दा विश्वविद्यालय के खर्चे के लिए 200 गाँव दान में प्राप्त थे, जिनकी आय से यहाँ के भिक्षु कार्यकत्ताओं और भिक्षु अध्येताओं का पोषण होता था। यही नहीं, इन गाँवों के निवासी प्रतिदिन कई मन चावल और दूध यहाँ भेजा करते थे। विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। उनके आवास और भोजन की व्यवस्था विश्वविद्यालय द्वारा निःशुल्क की जाती थी। इस शिक्षा संस्था में प्रवेश पाने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए कड़े नियम थे। ऐसे प्रवेशच्छुक विद्यार्थी को सबसे पहले द्वारपाल से बाद–विवाद करना पड़ता था तथा उसकी शंकाओं का समाधान करना आवश्यक था। उसके प्रश्नों से 8–10 विधार्थी असफल भी हो जाया करते थे और एक दो सफल। अपने–अपने विषय के यहाँ अनेक विद्वान थे।[5]

इंत्सिग के समय में यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या 3,000 थी किन्तु श्वानच्वांग के समय बढ़कर 10,000 हो गयी। यहाँ के शिक्षकों की संख्या 1,510 थी, जिनमें एक हजार दस सूत्र–निकायों में दक्ष थे और शेष पाँच सौ अन्य विषयों में। श्वानच्वांग के समय इस विश्वविद्यालय का प्रधान कुलपति शीलभद्र था, जो अनेकानेक विषयों में पारंगत था। उसके पहले धर्मपाल इस विश्वविद्यालय का कुलपति था। श्वानच्वांग भी यहाँ के प्रधान शिक्षकों में से था जिसने अनेकानेक विषयों पर अधिकार प्राप्त किया था। यहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सुदूर प्रदेशों और विदेशों से विद्यार्थी यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। चीन, तिब्बत, कोरिया, तुखार आदि अनेक देशों के विदेशी शिक्षार्थी यहाँ रहकर ज्ञान प्राप्त करते थे तथा अपनी रूचि के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करते थे।[6]

विद्यार्थी के अध्ययन के लिए यहाँ धर्मयज्ञ नामक विशालकाय पुस्तकालय था। ईत्सिग ने स्वयं 400 संस्कृत पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ तैयार की थीं जिनमें लगभग 5 लाख श्लोक थे। रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्रंजक नामक तीन भवनों से मिलकर भव्य पुस्तकालय का निर्माण हुआ था, जिनमें जिज्ञासु और अध्ययनशील विद्यार्थियों की प्रायः भीड़ रहा करती थी।

यहाँ का एक अध्यापन 9 या 10 विद्यार्थियों को पढ़ाता था। इस विश्वविद्यालय के अध्यापन कक्ष बहुधा बड़े–बड़े थे। इनमें 8 विशाल व्याख्यान भवन थे और 300 छोटे व्याख्यान कक्ष। सभी विषयों में मिलाकर नित्य लगभग 100 व्याख्यानों की आयोजना की जाती थी।[7]

नालन्दा में विशेषकर महायान शाखा का अध्ययन किया–कराया जाता था। यहाँ के अनेक बिहार भी महायानी शाखा के थे। पालि भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाती थी। नागार्जुन, बसुबंधु, असंग, धर्मकीर्ति आदि ऐसे ही महायानी विचारक थे जिन्होंने इसी शिक्षा–केन्द्र से अपने को उन्नत किया था। श्वनच्वांग ने अनेक ऐसे विद्वान आचार्यों का उल्लेख किया है, जो अपने–अपने विषय के प्रकांड पंडित थे तथा भारत के विभिन्न प्रदेशों से आकर यहाँ अध्ययन–अध्यापन करते थे। धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र, आर्यदेव, दिङनाग, ज्ञानचन्द्र आदि ऐसे ही प्रतिभावान् विद्वान थे जिनके आकर्षण से दूरस्थ विद्यार्थी भी ज्ञानार्जन के निमत्त आते थे और अपने को सुबुद्ध और सुरक्षित बनाने की चेष्टा करते थे। उदाहरण के लिए, ऐसे विद्वानों के नाम लिए जा सकते हैं, जो विभिन्न प्रदेशों के थे। आर्यदेव और दिङनाग दक्षिण भारत के थे। धर्मपाल काञ्ची का रहनेवाला था। शीलभद्र समतट (बंगाल) का निवासी था। गुणमति से स्थिरमति बलभी के रहनेवाले थे।[8]

विक्रमशिला विश्वविद्यालय

इस विश्वविद्यालय की स्थापना आठवीं सदी में बंगाल के पालवंशीय शासक धर्मपाल ने बिहार प्रदेश में स्थित भागलपुर से 25 मील दूर की थी। पूर्वमध्य युग के शिक्षा केन्द्रों

में इस विश्वविद्यालय की सर्वाधिक ख्याति थी। अनेक बौद्ध मन्दिरों और विहारों का निर्माण यहाँ कराया गया था। उन विहारों के कक्षों में व्याख्यान हुआ करते थे तथा सर्वदा दर्श और धर्म की चर्चाएँ आयोजित की जाती थी। यहाँ के अनेकानेक विद्वानों ने विभिन्न ग्रन्थों की रचना की, जिनका बौद्ध साहित्य और इतिहास में नाम है। उन विद्वानों में प्रसिद्ध हैं रक्षित, विरोचन, ज्ञानपद, बुद्ध, जेतारि, रत्नाकर शांति, ज्ञानश्री मित्र, रत्नवज्र, दीपशंकर और अभयशंकर। दीपंकर नामक विद्वान भिक्षु ने सैकड़ों ग्रन्थों (सम्भवतः 200 ग्रन्थों) की रचना की थी। वह इस शिक्षा–केन्द्र के महान् प्रतिभाशाली व्यक्तियों में अकेला था[8] जो गौड़ (बंगाल) प्रदेश का रहनेवाला था। उसका जन्म 980 ई0 में हुआ था। बचपन में ही उसे सांसारिक मोह–माया से विराग उत्पन्न हो गया और वह कृष्णगिरि बिहार में चला गया, जहाँ उसने राहुल गुप्त से ज्ञान प्राप्त किया। इसके पश्चात् वह ओदन्तपपुरी बिहार में गया। वहाँ उसे शीलरक्षित, चन्द्रकीर्ति और धर्मरक्षित जैसे बौद्ध अचार्यो ने शिक्षा दी। कालान्तर में वह बौद्ध धर्म और दर्शन का प्रकाण्ड पंडित हुआ। बौद्ध धर्मके प्रचारार्थ वह तिब्बत भी गया था।[9] यहाँ बौद्ध धर्म और दर्शन के अतिरिक्त न्याय, तत्वज्ञान, व्याकरण आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए पुस्तकें भी उपलब्ध की जाती थीं तथा उनकी जिज्ञासाओं का समाधान आचार्य द्वारा किया जाता था। देश के ही नहीं बल्कि विदेशों से भी छात्र यहाँ अध्ययन के लिए आते थे। विदेशी छात्रों में तिब्बत के अधिक छात्र होते थे जो बौद्ध धर्म और दर्शन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यहाँ रहते थे। प्रायः एक छात्रावास तिब्बत के ही छात्रों से भरा रहता था। शिक्षा–समाप्ति के बाद विद्यार्थी को उपाधिक प्राप्त होती थी जो उसके विषय की दक्षता का प्रमाण मानी जाती थी। दसवीं सदी में यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या काफी थी जा नालन्दा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की संख्या से किसी प्रकार कम नहीं थी। वस्तुतः पूर्वमध्ययुगीन भारत में इसे छोड़कर और कोई शिक्षा–केन्द्र इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था। कि सुदूर प्रदेशों के छात्र वहाँ जायें। इसलिए यहाँ छात्रों की अधिक संख्या होना स्वभाविक था। यहाँ के विहारों और आवासों में रहते थे। गौड़ सम्राट् धर्मपाल द्वारा निर्मित यहाँ का विहार अत्यन्त विशाल और प्रशास्त था, जिसके चारों ओर सुदृढ़ परिखा थी। इसमें बड़े और छोटे अनेक बौद्ध मन्दिर थे। धर्मपाल ने यहाँ 108 आचार्यो को शिक्षा प्रदान करने के लिए नियुक्त किया था। यहाँ के प्रबन्ध के लिए अनेक पदाधिकारी और कार्यकर्त्ता रखे गये थे।[10]

इस विश्वविद्यालय का समस्त व्यय बड़े–बड़े लोगों के दान और भेंट पर आधृत था। आवास और भोजन का प्रबन्ध में हाथ बँटाते थे। छात्र द्वारा–पण्डितों की समिति द्वारा इसका संचालन होता था जिसका प्रधान महास्थविर होता था। दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इसके प्रथम द्वार पर कश्मीर निवासी रत्नवज्र, द्वितीय द्वार पर गौड़ प्रदेश के रहनेवाले ज्ञानश्रीमित्र, तृतीय द्वार पर रतनाकर शांति, चतुर्थ द्वार पर वागीश्वर कीर्ति, पंचम द्वारा पर नरोप तथा षष्ठ द्वार पर प्रज्ञाकर मति बैठते थे।

पूर्वमध्ययुग में मुसलमानों के आक्रमणों के आक्रमण के कारण अनेक भारतीय शिक्षा–मंदिरों का विनाश हुआ। उनमें विक्रमशिला भी था, जिसे 1203 ई0 में बख्तियार खिलजी ने तोड़कर और जलाकर नष्ट कर दिया था। उसने इसे दुर्ग समझ रखा था और इसी कारण उसने इसे तोड़ा था। तबकात–ए–नासिरी में इसका विवरण दिया गया है, जिसके अनुसार यहाँ के निवासी अधिकांश ब्राह्मण (या बौद्ध भिक्षु) थे। सभी सिर मुड़ाये हुए थ। इन सबको तलवार के घाट उतार दिया गया। हिन्दू धर्म से संबंधित सैकड़ों पुस्तकें थी जिन्हें समझाने के लिए मुसलमानों ने बचे हुए अन्य पण्डितों को बुलाया, किन्तु कोई भी पण्डित अर्थ को ठीक से न समझ सका क्योंकि सभी विद्वान् मारे जा चुके थे।[11]

मध्यकाल में शिक्षा और शैक्षणिक व्यवस्था दो भागों में बंट गई–मुस्लिम शिक्षा और हिन्दू शिक्षा। 1707 ई0 के बाद भी शिक्षा का वही स्वरूप बन रहा। बिहार में मुस्लिम शिक्षा का विकास उसी प्रकार हुआ, जिस प्रकार भारत के विभिन्न सूबों में हुआ। यहाँ तीन प्रकार की संस्थाओं द्वारा मुस्लिम छात्रों को शिक्षा देने का काम किया जाता था। इनमें प्रथम मकतब था। मकतब कोई अलग से संगठन नहीं होता था। मस्जिदों एवं निजी मकानों में मकतब खुल जाते थे, जहाँ मुस्लिम छात्रों को शिक्षा दी जाती थी। दूसरा था खानकाह, भागलपुर, शेरघाटी, फुलवारीशरीफ, बिहारशरीफ आदि में बने हुए थे, जहाँ छात्रों को विशेषरूप से धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। तीसरा और अन्तिम मदरसा थे जो आज–कल के स्कूल और कॉलेज की तरह होता था। यह भी मस्जिदों से जुड़ा होता था।[12] इस काल में शिक्षा की बड़ी विशेषता यह थी कि इसका गहरा सम्बन्ध धर्म से था। मकतब और मदरसा में पढ़ने वाले सभी छात्रों को धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। चूँकि

शिक्षा स्थल मस्जिद, खानकाह और दरगाहों से जुड़े हुए थे, इसलिए शिक्षा का स्वरूप धार्मिक होना स्वाभाविक ही था। पाठ्य पुस्तकों में कुरान जैसे धर्म–शास्त्रों का अध्ययन सम्मिलित था। वास्तव में मुस्लिम समाज का आधार ही धर्म था। अतः धर्म सार्वजनिक शिक्षा का एक प्रमुख और महत्वपूर्ण अंग था।

मुस्लिम बच्चे अपनी प्रारंभिक शिक्षा एक समारोह के साथ आरम्भ करते थे जिसे 'विस्मिल्लाह' या 'मकतब' समारोह कहा जाता था। जब बच्चा चार वर्ष चार महीने और चार दिन का हो जाता था त बवह शिक्षा ग्रहण करने के लिए शिक्षण संस्थान में भेजा जाता था। अमीरों अथवा सामन्तों की संताने सार्वजनिक शिक्षण संस्थानों में शिक्षा ग्रहण नहीं करती थीं। वे घर आये शिक्षकों, जिन्हें उस्ताद कहा जाता था, से शिक्षा ग्रहण करती थी। प्राथमिक स्कूलों में मुस्लिम छात्र कुरान का अध्ययन करते थे और उसके आयतों को कण्ठस्थ करते थे। उन्हें सामान्य लेखन जोड़–घटाव ओर गुण–भाग का ज्ञान भी दिया जाता था। अक्षरों और शब्दों का ज्ञान बढ़ाने के प्श्चात प्रत्येक विद्यार्थी के लिए पाक कुरान सस्वर पढ़ना आवश्यक था। कारी (जामत) छात्रों को कुरान पढ़ाने की पद्धति बताया करते थे। प्रारम्भिक शिक्षा में ही साहित्य, इतिहास, तर्क और नीति शास्त्र का अध्ययन किया जाता था। विद्यार्थी इसी काल में वन्दनामा, आमदनामा, गुलिस्तां, बोस्तां, सिकन्दरनामा आदि कृतियों का अध्ययन कर लिया करते थे। जो छात्र केवल प्राथमिक शिक्षा ही ग्रहण कर रह जाता था, उसे मुंशी कहा जाता था। लेकिन जो प्राथमिक शिक्षा के बाद की शिक्षाओं को भी ग्रहण करता था, उसे मौलवी, मौलाना या फाजील (फ्वाजील) कहा जाता था। वे विभिन्न शैक्षणिक उपाध्यिाँ छात्र द्वारा प्राप्त ज्ञान एवं शिक्षा के स्तर पर निर्भर करती थी। जो अरबी भाषा का अध्ययन करता था, उसे भाषा के अध्ययन के साथ पैगम्बर मोहम्मद के जीवन एवं शिक्षाओं के अध्ययन, भाषा एवं टीका सहित कुरान, तर्कशास्त्र, दर्शन–शास्त्र एवं कलाम का अध्ययन भी करना पड़ता था।[13]

माध्यमिक शिक्षा भी मस्जिदों और दरगाहों में बैठ कर प्राप्त की जाती थी। सूफियों के दरगाहों में बैठ कर शिक्षा ग्रहण करना पवित्र माना जाता थाऔर यह भी माना जाता था कि यहाँ गंभीर शिक्षा प्राप्त की जा सकती है। स्थानीय दरगाहों को महत्त्व दिया जाता था, क्योंकि वे सुफियों, मौलवियों और पीर से जुड़े होते थे। मकदुम शर्फुदीन याहयामनेरी एसे ही एक संत थे जो गंभीर ज्ञान के व्यक्ति थे। उनकी दरगाह शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था।

माध्यमिक शिक्षा में रहस्यवादी और धार्मिक शिक्षाएँ दी जाती थीं इस स्तर पर मुस्लिम लड़कों को धर्म निरपेक्ष शिक्षा भी दी जाती थी। फारसी भाषा शिक्षा का माध्यम थी, लेकिन अरबी भाषा भी पढ़ाई जाती थी। वास्तव में जो छात्र उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त करना चाहता था, उसे अरबी भाषा में ही अध्ययन करना पड़ता। अतः मदरसा विभिन्न विषयों का ज्ञान छात्रों को दिया करता था। खुलासतउल–ए–मकतब में माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों का उल्लेख किया गया है। जिसकी खोज मैलना अबुल हस्नातनदवी ने की है। सम्भवतः इस ग्रन्थ की रचना औरंगजेब के काल में 42 वर्षो के अथक परिश्रम के बाद एक हिन्दू लेखक ने की थी। ऐसा लगता है कि सिर्फ बिहार में माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में साहित्य कविता, उपन्यास, इतिहास और अर्थशास्त्र शामिल थे। बिहार में इन विषयों को विशेषरूप में पढ़ाया जाता था।

उच्च शिक्षा के लिए आजकल के महाविद्यालयों की तरह मदरसा हुआ करते थे, वयस्क विद्यार्थियों के कला और विज्ञान की ऊँची शिक्षा दी जाती थी, लेकिन इस स्तर पर भी शिक्षा का मूलाधार धर्म ही था। बर्नी लिखता है कि ''सुल्तान महमूद के काल से ही तफसीर, हदीश और फिक्ख की शिक्षा दी जाती थी।'' क्योंकि उसे ही विद्वान माना जाता था, जो पैगम्बर और खुदा द्वारा कहा गया हो। इसके अतिरिक्त सब कुछ 'अ–विज्ञान' था और उसका सार्वजनिक रूप से अध्ययन वर्जित था। मदरसा के पाठ्यक्रमों में व्याकरण, तर्कशास्त्र, साहित्य, धर्मशास्त्र, गणित, न्यायशास्त्र और चिकित्सा शास्त्र शामिल थे। अकबर के काल में ज्योतिष शास्त्र, गणित और दर्शन पर अधिक ध्यान दिया जाता था। स्मरण रहे इन सारे विषयों की पढ़ाई औरंगजेब के बाद भी चलती रही। अबुल फजल के अनुसार, ''इस काल में कृषि शास्त्र, ज्यामिति शास्त्र, गणित आदि विषयों की पढ़ाई भी होती थी। ये विषय बाद के वर्षो में भी चलते रहे।[14]

मदरसों में प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाता था। कभी–कभी सबसे अधिक जानकार छात्र जिसे 'मोअयद' कहा जाता था, अपने सहपाठियों को पढ़ाता भी था। वह कभी–कभी अपने शिक्षक से भी ज्ञान–वृद्धि के लिए वाद–विवाद करता था।[15]

परीक्षा प्रणाली सरल थी। जाँच और वाद–विवाद के आधार पर छात्रों की मेघा का निर्धारण कर उसे सफल घोषित किया जाता था। सफल छात्र उलमाओं की सभा में

उपस्थित होता था और उसका रस्म–ए–दस्तकबन्दी किया जाता था, जिसे आज का दीक्षान्त समारोह कहा जा सकता है। समारोह का मुख्य आकर्षण था सफल छात्र के सिर पर पगड़ी बाँधने का रस्म और आलीम तथा शेख का पद दिया जाना।'' आज की तरह की परीक्षाएँ उस काल में नहीं होती थी। दूसरे वर्ग में प्रोन्नति के लिए विद्यार्थियों को विभिन्न परीक्षाओं में बैठना अनिवार्य नहीं था। किसी खास विषय में छात्र की अभिरूचि देखकर ही उसे प्रोन्नति दी जाती थी। असल में उसके सम्पर्क में रहने वाला शिक्षक ही उसकी प्रतिभा का आकलन करता था। छात्रों को नियमित रूप से प्रतिवर्ष डिग्रीयाँ नहीं दी जाती थी। किसी फाजील (विद्वान) शिक्षक की सेवा में रहकर अध्ययन करना एक बहुत बड़ी बात होती थी। विद्यार्थियों और शिक्षकों के पारस्परिक सम्बन्ध बड़े ही मधु हुआ करते थे। अस्पतालों में चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई पर ध्यान रखा जाता था।[16]

मस्जिदों, खानकाहों और मदरसों में पुस्तकालय हुआ करते थे, जिनमें इस्लाम से संबंधित पुस्तकें भरी रहती थी। बिहार के अनेक नगरों में ऐसे पुस्तकालय थे। भागलपुर और फुलवारीशरीफ के खानखाह इन पुस्तकालयों के लिए विचयात थे। भागलपुर का खानखाह आवासीय विद्या का एक उच्चस्तरीय संस्थान था जिसके साथ एक अच्छा पुस्तकालय भी सम्बद्ध था। इसी प्रकार फुलवारीशरीफ के खानखाह में बड़ा पुस्तकालय था, जिसका सदुपयोग विद्धत्जन भी करते थे मध्युगीन बिहार में महिलाओं की शिक्षा की अच्छी व्यवस्था थी। महिलाओं को शैक्षणिक प्रशिक्षण दिया जाता था। यद्यपि पर्दा–प्रथा के कारण शिक्षा ग्रहण करने में हिन्दू और मुस्लिम प्रजा को कठिनाई होती थी, फिर भी अभिजात्य परिवार की महिलाएँ घर पर शिक्षकों से पढ़ती थी। कुछ निजी मकानों में तकतब हुआ करते थे, जहाँ ुस्लिम महिलाएँ धार्मिक शिक्षा ग्रहण करती थी। पढ़ी–लिखी महिलाएँ विशेषकर मध्यमवर्गीय विधवाएँ शिक्षा देने का काम करती थी। शिक्षाप्रद कहानियों को सुनकर भी मुस्लिम भारत की महिलाएँ शिक्षा ग्रहण करती थी।[17]

मुस्लिम शिक्षा के कई केन्द्र थे जहाँ छात्र, विद्वान और शायर मिला करते थे। मौलाना मुहम्मद हुसैन काश्मीरी, मिर्जा मोहम्मद हुसैन कश्मीरी, मिर्जा मोहम्मद हुसैन हकीम आरीफ और मौलाना हमिदउदीन आदि विद्वान इस काल में उल्लेखनीय रहे हैं। बिहार के नगर भी कवियों और विद्वानों का सम्मान करते थे। इस काल में बिहार के विद्वानों में मौलाना नदीम गिलानी, मिर्जा कासिम इमामी इसफानी इब्राहीम हुसैन काबुली, मीर हबीबउल्ला आदि इस काम में महत्त्वपूर्ण थे। विहारशरीफ, मनेर, फुल्वारीशरीफ, गया, पटना, अमझार, शेरघाटी, हाजीपुर आदि शिक्षा के केन्द्र थे, जहाँ उच्च शिक्षा दी जाती थी। पठना और भागलपुर का मदरसा काफी प्रसिद्ध था, जहाँ भारत के कई स्थानों से विद्वान और छात्र शिक्षा ग्रहण करने के लिए आया करते थें।[18]

इस काल में शिक्षा के वे केन्द्र बने रहे, जो औरंगजेब के पहले से चले आ रहे थे। बिहार के विभिन्न भागों में प्रसिद्ध शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित थी, जो मुस्लिम छात्रों को शिक्षा दिया करती थी। मुस्लिम विधि का ज्ञान औा धार्मिक सिद्धान्त देने वाले कई मुस्लिम को उत्तर मुगलकलीन कुछ बादशाहों ने अपने दिल्ली दरबार में आमंत्रित भी किया। बिहार के नगरों और शहरों में अच्छी संख्या में शिक्षण संस्थाएँ थी। इनमें पटना और भागलपुर के मदरसे अत्यधिक प्रसिद्ध के पूर्वार्द्ध में जब शैफ खाँ पठना का गवर्नर था, तब मुस्लिम शिक्षा और विद्या के विकास के लिए वहाँ मदरसा स्थापित था। मदरसा में अच्छे शिक्षक थे, जो उस काल के विद्वान आचार्य की श्रेणी में आते थे। मदरसा एक भव्य भवन था, जो गंगा के किनारे किले से थोड़ी दूर पश्चिम की ओर बना था। इस से सटे हुए मस्जिद में निवास के प्रकोष्ठ बने हुए थे, जिनमें शिक्षक रहते थे। 18वीं सदी के मध्य काल तक मदरसा शिक्षा के प्रमुख केन्द्र बने रहे एवं इनके प्रधान मुस्लिम विधि के प्रकाण्ड विद्वान माने जाते थे।[19]

इसी प्रकार भागलपुर का मदरसा अपनी गरिमा के लिए प्रसिद्ध था। इस नगर में कई संत परिवार थे जिनके सदस्य मदरसा में ऊँची शिक्षा देने का काम करते थे। धर्म–निरपेक्ष और धार्मिक शिक्षा देने के लिए इनके शासनकाल में ही मौलाना शाहबाज ने एक मदरसा की स्थापना की थी, जहाँ प्रारम्भिक शिक्षा के साथ–साथ इस्लाम से सम्बन्धित ऊँची शिक्षा भी दी जाती थी। इस मदरसे में छात्रावास की व्यवस्था भी थी। शाहजहाँ के बाद छात्रावास में छात्रों के निवास और भोजन का खर्च 'पैसे' मदरसे को प्रदत्त जागीरों से लेता था। मुल्लाचक मुहल्ले में अभी भी मदरसा का भवन जीर्णावस्था में देखा जा सकता है। मौलाना शाहबाज धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति और महान् विद्यानुरागी थी। उनके जीवन–काल में 200 विद्यार्थी इन मदरसों में अध्ययन करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों ने सफलतापूर्वक मदरसे का संचालन किया। उनके पोते मौलाना

मोहम्मद आसीम के काल में यह मदरसा भ्रातृत्व–भावना की वृद्धि के लिए लाभकारी शिक्षा देने लगा।[20]

मुस्लिम शिक्षा की तरह बिहार में हिन्दुओं की शिक्षा का भी प्रबंध था। मुस्लिम शासन की स्थापना के पूर्व बैदिक शिक्षा और बौद्ध शिक्षा की पद्धति प्रचलित थी। इस शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान की वृद्धि करना और चरित्र का निर्माण करना था। बिहार में हिन्दू छात्रों के लिए पाठशाला, महाविद्यालय आदि बने हुए थे और निजी शिक्षक भी घरों में जाकर शिक्षा देने का काम करते थे। प्रारम्भिक शिक्षा और ऊँची शिक्षा के लिए अलग–अलग षिक्षण संस्थाएँ थी। टॉल्स में ऊँची शिक्षा दी जाती थी, जबकि पाठशाला में छात्र प्रारंम्भिक शिक्षा ग्रहण करते थे।[21]

एक टॉल में गुरूकुलनुमा कुटिया होती थी जहाँ शिक्षक और छात्र मिलते थे और अध्ययन–अध्यापन करते थे। मिट्टी और फूस से बने बड़े से हॉल में छात्र सादगी से रहा करते थे। प्रत्येक विद्यार्थी का अपनी–अपनी चटाई और जलपात्र हुआ करता था। शिक्षा ग्रहण करने के लिए आठ या दस वर्ष तक टॉल में रहा करते थे। शिक्षक हमेशा यहाँ ह रह कर बाहर रहते थे और प्रतिदिन अध्यपन करने वे टॉल पहुँचते थे। छात्रों से अक्सर शुल्क नहीं लिया जाता था और शिक्षक ही भोजन तथा वस्त्रों की व्यवस्था करते थे। अच्छे चरित्र वाले शिक्षक अपनी प्रतिष्ठा के कारण शिक्षण–कार्य के लिए प्राप्त सहायता एवं दान की राशि से महाविद्यालय चलाया करते थे।[22]

पाठशाला में प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी। दो प्रकार की पाठशालाएँ थी– छात्रावास वाली और गैर छात्रावास वाली। अधिकांश पाठशाला में छात्रावास हुआ करते थे। प्रायः शैक्षणिक वाद–विवाद और बहस इन पाठशालाओं में हुआ करती थीं। कवि गोष्ठियाँ और भजन–कीर्तन और भी हुआ करते थे। इससे शिक्षा लोकप्रिय हो जाती थी। शिक्षक कीर्तन करने में दक्ष थे और शब्दों की संरचना करने में भी निपुण थे। पाठशालाओं में तर्कशास्त्र और दर्शन तथा पाँच विद्याओं–शब्द विद्या, शिल्प स्थान विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या और अध्यात्म विद्या– का अध्ययन किया जाता था। जब छात्र इन शास्त्रों का अध्ययन कर लेते थे, तब यह माना जाता था कि उसने सार्वजनिक विद्या का अध्ययन कर लिया है। तत्पश्चात् ऊँची शिक्षा और विशिष्ट शिक्द्धाा का अध्ययन करना होता था।

उच्च शिक्षा के लिए बिहार के हिन्दू चार शास्त्रों का अध्ययन करते थे, जिन्हें 'चतुष्पथ' कहा जाता था। इसमें व्याकरण, विधि, पुराण और दर्शन शामिल थे। इनका अध्ययन ऑल या महाविद्यालयों में किया जाता थां अध्ययन अध्यापन का माध्यम संस्कृत था। पाठ्यक्रमों में काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, छनद निरूक्त और न्याय दर्शन शामिल थे। कुछ महाविद्यालयों में वेद–पुराण, विभिन्न विचार वाले दर्शन, चिकित्सा शास्त्र, ज्योमिती, ज्योतिष शास्त्र, वंश–तालिका, इतिहासा और भूगोल की पढ़ाई होती थी। कुछ विद्यालयों में वाण–विद्या औ भक्ति योग, शब्द–कोष, यंत्र और मल्ल विद्या का भी अध्यापन किया जाता था। ऊँची शिक्षा के संबंध में बर्नियर ने अपना विवरण प्रस्तुत किया है, जिससे पता चलता है कि कथित विषयों की पढ़ाई विभिन्न विद्यालयों और महाविद्यालयों में हुआ करती थी। प्रायः इन विद्याओं का अध्ययन बिहार के साथ–साथ उत्तरी भारत के अन्य हिस्सों में किया जाता था। संस्कृत का अध्ययन करने वाले छात्र व्याकरण, न्याय, वेदान्त और पातंजल का अध्ययन करते थे। इन विषयों का अध्ययन अपरिहार्थ था। हिन्दू छात्र गणित, ज्योतिषशास्त्र, ज्यामितीशास्त्र और चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करते थे। उच्च शिक्षा का यह क्रम और पाठ्यक्रम आगे भी प्रचलित रहा। [23]

बिहार के टॉल्स में मुख्य रूप से संस्कृत भाषा और साहित्य, व्याकरण और बेद, पुराण, आचारशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष–शास्त्र, गणित, भूगोल औरराजनीति शास्त्र पढ़ाए जाते थे। संस्कृत विद्यालयों में संस्कृत के अतिरिक्त पाली, प्राकृत, हिन्दी, बंगाली, उड़िया ओर अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की भी पढ़ाई होती थी।

नियमित परीक्षा की प्रणाली नहीं थी। जब विद्यार्थी रनातक हो जाता था तब उसकस परीक्द्धाण किया जाता था और उत्तीर्णता प्राप्त करने पर उसे उपाध्याय, महोपाध्याय, महामहोपाध्याय, सार्वभैम आदि की उपाधि दी जाती थी। अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग उपाधियाँ प्रदान करने की प्रक्रिया प्राध्यापक की विद्वता पर निर्भ करती थी।[24]

मिभिला में ब्राह्मणवादी संस्कृति प्रचलित थी, जहाँ छात्रों की प्रतिभा और योग्यता जाँच करेन की प्रणाली अलग थी। जाँच की एक प्रणाली 'सलाख' परीक्षा थी, जो सम्भवतः सर्वाधिक कठिन थी। इस परीक्षा में विद्यार्थी किसी पुस्तक के संदर्भ की व्याख्या करता था। जो विद्यार्थी व्याख्या करने में सफल होता था, उसे उपाधि दी जाती थी। धौत परीक्षा की प्रणाली भी प्रचलित थी। दरभंगा के महाराजा अपने दरबार में इसकी परीक्षा यिला

करते थे। इस प्रणाली में दरबार का पण्डित छात्रों की जाँ करता था और महाराजा की उपस्थिति मे साहित्यिक वाद–विवाद में उसे सम्मिलित होना पड़ता था। उत्तीर्ण छात्र को एक जोड़ी धोती और प्रथम श्रेणी में प्रथम आने वाले छात्र को दोसाला दिया जाता था।[25]

शिक्षकों और छात्रों के वेतन और शुल्क के संबंध में टी0सी0 दास गुप्ता ने अपना मन्तव्य प्रकट किया है– 'उस शिक्षक की काफी भर्त्सना की जाती थी, जो पैसे के लिए पढ़ाता था। शिक्षक संस्कृति का भण्डार माना जाता था और उसका कर्त्तव्य था विद्या और ज्ञान देना, ताकि शिक्षक का ज्ञान सबको मिले और वह उसकी मृत्यु के साथ नष्ट न हो। बिहार में हिन्दू शिक्षा का यह आदर्श उत्तर मुगल काल में भी चलता रहा। ब्राह्मण–विद्यालयों में छात्रों को शुल्क देना नही पड़ता था, इसके विपरीत शिक्षक ही निःशुल्क शिक्षा देने के साथ–साथ विद्यार्थियों के भोजन की व्यवस्था करता था। लेकिन जब विद्यार्थी की शिक्षा समाप्त हो जाती थी, तब विद्यार्थियों के नकद या रसद के रूप में अपने शिक्षक को कुछ देना पड़ता था।[26]

यद्यपि बिहार में महिलाओं की ऊँची शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी, फिर भी, उन्हें शैक्षिक माहौल प्रदान करने का प्रयास किया जाता था। उन्हें कला और विज्ञान मे दक्षता प्राप्त करने के लिए सहूलियत दी जाती थी। पर्दा–प्रथा और बाल–विवाह के कारण महिलाओं को ऊँची शिक्षा देना मुश्किल था। फारसी या वर्नाकुलर साहित्य में कहीं भी बालिका विद्यालय या बालिका महाविद्यालय होने का संकेत नहीं मिलता है। लड़कियाँ प्रारम्भिक विद्यालयों में जाती थी और प्रारम्भिक शिक्षा पाती थी, फिर भी इस काल में महिलाएँ विदुषी होती थी।[27] सूफी कवि 'मनझन' की कृति 'मधुमती' में ऐसी महिलाओं की चर्चा मिलती है। मधुमती विदुषी महिला थी, जिसने कामसूत्र का अध्ययन किया था। उसने राजकुमार मनोहर को प्रेम–पत्र लिखा था। इसी पुस्तक से इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि उसने अपनी मित्र प्रेमा को भी पत्र लिखा था और उससे अपनी शादी में शामिल होने का आग्रह किया था। इसी प्रकार चित्रसेन की राजकुमारी प्रेमा शिक्षित महिला थी। वह कागज पर सुन्दर अक्षरों में लिखने में समर्थ थी। 17वीं –18वीं सदी में मिथिला की महिलाएँ दर्शनशास्त्र में भी अभिरूचि लेती थी। लखिमा देवी ने जो राजा चन्द्र सिंह की पत्नी थी। न्याय वैशेषिक पर एक पुस्तक को रचना की थी, जिसका नाम था 'पदार्थ चन्द्र'। अपने गुरू मिसरू मिश्र के आदेश से उसने इस पुस्तक की रचना की थी। विश्वास देवी (राजा पदम सिंह की पत्नी), चन्द्रकला देवी (विद्यापति की पतोही) इस काल की अन्य विदुषी महिलाएँ थी। इस प्रकार बिहार में नियमित शिक्षा न दिये जाने पर भी कुछ महिलाएँ अत्यन्त पढ़ी–लिखी थी।[28]

और इस प्रकार हमने दर्शाने का प्रयास है कि प्राचीन बिहार में नालन्दा, उदन्तपुर और विक्रमशिला उच्च शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। जिनका उल्लेख जायसी ने किया है। मिथिला महान् शिक्षा का केन्द्र था। जहाँ सैकड़ों विद्यार्थी बाहर से आकर शिक्षा ग्रहण करते थे। न्याय अथव तर्कशास्त्र का श्रेष्ठतम अध्यापन मिथिला में ही किया जाता था। उपनिषद् काल से ही मिथिला की उपलब्धि देश–देशान्तर में प्रसिद्ध थी। तिरहुत और मिथिला की शिक्षा और संस्कृति बरकरार रही। वहाँ शिक्षा की जो दो प्रणालियाँ प्रचलित थी उसका उल्लेख किया जा चुका है। 1574 ई0 में बिहार (अकबर के काम में) मुगल साम्राज्य का अंग बना था तब से यहाँ शिक्षा का प्रचार–प्रसार होने लगा था। मिर्जा आरीफ बेग, अहमद यार खान आदि ने बिार के शिक्षा के विकास के लिए रचनात्मक कार्य किया। जब दरभंगा राज की स्थापना 'महेश ठाकुर' ने की, तभी से मिथिला शिक्षा और संस्कृति का केन्द्र बना रहा। भागलपुर, पटना, बिहार, सिवान तथा शिक्षा के अन्य केन्द्रों ने शिक्षा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

सन्दर्भ सूची :

1. *श्री हवलदार त्रिपाटी 'सहृदय'–बौद्धधर्म और बिहार, बिहार–राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, द्वितीय संस्करण 1997, पृ0–165*
2. *पूर्वोक्त, पृ0–166*
3. *पूर्वोक्त, पृ0–वही*
4. *पूर्वोक्त, पृ0–वही*
5. *पूर्वोक्त, पृ0–वही*
6. *पूर्वोक्त, पृ0–169*
7. *पूर्वोक्त, पृ0–216*
8. *पूर्वोक्त, पृ0–वही*
9. *पूर्वोक्त, पृ0–217*
10. *पूर्वोक्त, पृ0–वही*

11. हरिहर दास – मध्यकालीन बिहार (1707 – 1765 ई0), जानकी प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, 2005, पृ0–144
12. पूर्वोक्त, पृ0–145
13. पूर्वोक्त, पृ0–वही
14. पूर्वोक्त, पृ0–146
15. पूर्वोक्त, पृ0–वही
16. आर0आर0 दिवाकर – बिहार थ्रू दि एजेज, ओरियन्ट लॉगमेन्स, नई दिल्ली, 1957, पृ0–435
17. पूर्वोक्त, पृ0–वही
18. हरिहर दास – मध्यकालीन बिहार (1707 – 1765 ई0), जानकी प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, 2005, पृ0–147
19. पूर्वोक्त, पृ0–वही
20. दि कम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार, भाग–2, पार्ट–2, पृ0–435
21. हरिहर दास – मध्यकालीन बिहार (1707 –1765 ई0), जानकी प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, 2005, पृ0–148
22. आर0आर0 दिवाकर – बिहार थ्रू दि एजेज, ओरियन्ट लॉगमेन्स, नई दिल्ली, 1957, पृ0–435
23. हरिहर दास – मध्यकालीन बिहार (1707 – 1765 ई0), जानकी प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, 2005, पृ0–148
24. पूर्वोक्त, पृ0–वही
25. दि कम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार, भाग–2, पार्ट–2, पृ0–395
26. डॉ0 मदनमोहन मिश्र – पूर्व मध्यकालीन बिहार का समाज एवं धर्म, जानकी प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, 2006, पृ–2017
27. टी0सी0 दासगुप्ता – आस्पेक्ट्स ऑफ बंगाली सोसाइटी, पृ0–171
28. आर0आर0 दिवाकर – बिहार थ्रू दि एजेज, ओरियन्ट लॉगमेन्स, नई दिल्ली, 1957, पृ0–414